बी0ए0 -II समाजशास्त्र

सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण

(द्वितीय प्रश्नपत्र)

डॉ0 अभिषेक गोपाल
प्रवक्ता–समाजशास्त्र, श्री हरिश्चन्द्र पी0जी0 कालेज, वाराणसी
मो0 8765857996

Unit-I

अध्याय–1

सामाजिक परिवर्तन : अर्थ, अवरधारणा एवं प्रकृति

परिवर्तन क्या है?

परिवर्तन का सामान्य तात्पर्य है किसी क्रिया अथवा वस्तु की पहले की स्थिति में बदलाव आ जाना।

फिचर (Fichter) के अनुसार परिवर्तन में तीन प्रमुख तत्वों का समावेश होता है–

1. वस्तु (Object) 2. समय (Time) 3. भिन्नता (Variation)

किसी वस्तु में दो समय में दिखाई देने वाली भिन्नता ही परिवर्तन है।

सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा परिवर्तन से भिन्न है। जब दो विशेष अवधियों के बीच व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक ढाँचे, प्रस्थिति तथा भूमिका तथा सामाजिक मूल्यों में भिन्नता उत्पन्न होती है, तब इसी भिन्नता को हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

According to Maciver & Page, ''समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से है, इस दृष्टिकोण से सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को ही हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।''

According to Kingsley Davis ''सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक संगठन अर्थात् समाज के ढाँचे और कार्यों में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन से है।''

समाज के ढाँचे का निर्माण समाज में व्यक्तियों को मिलने वाली प्रस्थिति और उससे सम्बन्धित भूमिकाओं से होता है। अनेक संस्थाएं (Institutions) भी समाज के ढाँचे को बनाने में योगदान करती है।

इस प्रकार Kingsley Davis ने पूर्णतः समाजशास्त्रीय ढंग से सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या की है।

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं–

1. सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था से है।
2. सामाजिक परिवर्तन पर सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

3. सामाजिक परिवर्तन अवश्यम्भावी एवं स्वाभाविक है।

4. सामाजिक परिवर्तन एक जटिल तथ्य है।

5. सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा तुलनात्मक है।

6. सामाजिक परिवर्तन की निश्चित भविष्यवाणी संभव नहीं।

7. सामाजिक परिवर्तन एक गुणात्मक प्रक्रिया है।

8. सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय तथा रेखीय स्वरूप

सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमान (Patterns)

1. प्रथम प्रतिमान–

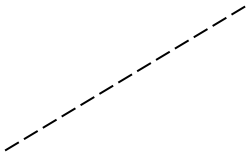

रेखीय परिवर्तन (Linear Change)

उदाहरणार्थ– प्रौद्योगिकी में परिवर्तन, आविष्कारों से उत्पन्न परिवर्तन

2. द्वितीय प्रतिमान–

उतार–चढ़ाव वाला परिवर्तन

उदाहरणार्थ– जनसंख्या सम्बन्धी परिवर्तन तथा आर्थिक क्रियाओं में होने वाला परिवर्तन।

3. तृतीय प्रतिमान–

इसे चक्रीय परिवर्तन अथवा तरंगीय परिवर्तन कह सकते हैं।

उदाहरणार्थ– सांस्कृतिक विशेषताओं, फैशन तथा सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएं अथवा स्वरूप–

1. प्रक्रिया (Process)
2. उद्विकास (Evolution)
3. प्रगति (Progress)
4. विकास (Development)
5. क्रान्ति (Revolution)
6. अनुकूलन (Adaptation)

उद्विकास के रूप में होने वाले परिवर्तन की विवेचना सर्वप्रथम डार्विन द्वारा की गयी। इसी के आधार पर स्पेन्सर ने सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। उद्विकास वे परिवर्तन है जो किसी वस्तु के आन्तरिक तत्वों के कारण एक क्रमिक प्रक्रिया के द्वारा उस वस्तु का रूप बदल देता है। इस प्रकार ऐसे परिवर्तन एक निश्चित दिशा की ओर अवश्य होते हैं लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि वह समाज के लिये अच्छे होंगे या बुरे। ऐसे परिवर्तन आरम्भ से बहुत अनिश्चित प्रकृति के होते है लेकिन धीरे–धीरे उनका रूप स्पष्ट होने लगता है। साथ ही यह परिवर्तन आरम्भ में समान प्रकृति के दिखाई देते हैं लेकिन धीरे–धीरे इनके फलस्वरूप समाज में एक स्पष्ट भिन्नता दिखाई देने लगती है। उदाहरण के लिए, आरम्भ में विवाह जैसी कोई संस्था विद्यमान नहीं थी तथा सभी स्त्री–पुरूषों के सम्बन्ध उन्मुख थे। दूसरे स्तर

पर एक–एक स्त्री ने अनेक पुरूषों के साथ विवाह–सम्बन्ध स्थापित करके परिवार की स्थापना आरम्भ की। समाज में पुरूषों की सामाजिक शक्ति अधिक हो जाने के बाद बहु–पत्नी विवाह आरम्भ हुआ, जबकि बाद में नैतिक नियमों का प्रभाव बढ़ने से एक विवाह को प्रधानता दी जाने लगी। यह विवाह संस्था में होने वाले क्रमिक परिवर्तन है जिसे उद्‌विकास कहा जाता है।

प्रगति सामाजिक परिवर्तन का वह रूप है जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त लक्ष्यों की दिशा में होता है। प्रगति का तात्पर्य अच्छाई की ओर होने वाले उस परिवर्तन से है जो सामाजिम मूल्यों के अनुसार होता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्रगति की अवधारणा तुलनात्मक है। इसका कारण यह है कि विभिन्न समाजों के नैतिक मूल्य एक दूसरे से कुछ भिन्न होते हैं तथा प्रत्येक समाज अपने सामाजिक मूल्यों के अनुसार ही होने वाले परिवर्तन को प्रगति मानता है।

साधारणतया 'प्रगति' तथा 'विकास' शब्दों का प्रयोग समान अर्थों में ही कर लिया जाता है लेकिन विकास के रूप में होने वाला परिवर्तन प्रगति से कुछ भिन्न होता है। विकास परिवर्तन का वह रूप है जिसमें मनुष्य प्राकृतिक और प्रौद्योगिक शक्तियों पर अपने अधिकार को बढ़ाकर प्रकृति पर्यावरण पर लगातार कम निर्भर होता जाता है। यह परिवर्तन का वह रूप है जो आर्थिक वृद्धि के द्वारा प्रभावपूर्ण बनता है। नवाचारों के द्वारा कृषि में होने वाली प्रगति, औद्योगीकरण के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति

आय में वृद्धि और इस प्रकार जनसाधारण के जीवन–स्तर में होने वाला सुधार, आर्थिक विकास के द्वारा शिक्षा एवं समाज की संरचना में होने वाले परिवर्तन विकास के विभिन्न रूपों को ही स्पष्ट करते हैं।

क्रांति सामाजिक परिवर्तन का वह रूप है जो राजनीतिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के सम्पूर्ण रूप को बदल देता है। यह एक तीव्र परिवर्तन है जो पहले से स्थापित मूल्यों में आमूल परिवर्तन लाने पर बल देता है। एक तीव्र परिवर्तन होने के कारण इसकी प्रकृति और परिणामों की कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

परिवर्तन का एक अन्य रूप अनुकूलन की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। अनुकूलन परिवर्तन का वह रूप है जिसमें समाज के अधिकांश व्यक्ति अपने आपको बदलती हुई दशाओं के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह दशायें प्राकृतिक भी हो सकती है तथा सामाजिक भी। सामाजिक आधार पर जब एक दूसरे से भिन्न संस्कृतियों वाले दो समूह एक–दूसरे की विशेषताओं को ग्रहण करते हैं, तब यह दशा भी अनुकूलन का उदाहरण है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक युग में मानव दूसरे समूहों तथा अपनी बदलती हुयी दशाओं से अनुकूलन करता रहा है।

सामाजिक परिवर्तन तथा सांस्कृतिक परिवर्तन–

अक्सर सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन शब्द का उपयोग समान अर्थों में कर लिया जाता है, लेकिन दोनों में पर्याप्त अन्तर है।

1. सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों से है, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन का सम्बन्ध संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक पक्षों में होने वाले परिवर्तनों से है।
2. सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा सांस्कृतिक परिवर्तन की परिधि कहीं अधिक विस्तृत है।

सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध संस्कृति के अभौतिक पक्ष से है जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन का सम्बन्ध संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक दोनों पक्षों से है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का एक अंग है तथा सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से अधिक व्यापक है।

उदाहरण– औद्योगीकरण तथा यातायात के नवीन साधनों के फलस्वरूप भारत में संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं। स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति उँची उठी है, जाति–प्रथा के नियमों तथा छुआछूत में शिथिलता आयी है। ये सभी सामाजिक परिवर्तन है।

दूसरी ओर, सांस्कृतिक परिवर्तनका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यातायात के लिये बैलगाड़ी के स्थान पर रेल, वायुयान और जहाज का प्रयोग, कपड़ों की नयी फैशन, हथकरघों के स्थान पर मशीनों द्वारा कपड़े का उत्पादन आदि सभी सांस्कृतिक परिवर्तन के उदाहरण हैं।

3. सामाजिक परिवर्तन प्राकृतिक कारणों तथा जान–बूझकर किये गये प्रयत्नों दोनों के कारण उत्पन्न हो सकते हैं, जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन नियोजित एवं सचेतन प्रयत्नों के कारण उत्पन्न होते हैं।

4. सामाजिक परिवर्तन के कारण सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन आता है जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन में संस्कृति के विभन्न पक्षों में।

5. सामाजिक परिवर्तन एक प्रक्रिया है जो प्रत्येक समाज में सदैव क्रियाशील रहती है। दूसरी ओर सांस्कृतिक परिवर्तन सदैव घटित नहीं होते बल्कि विशेष दशायें ही सांस्कृतिक परिवर्तन को जन्म देती है।

6. सांस्कृतिक परिवर्तन की तुलना में सामाजिक परिवर्तन की गति अधिक तेज होती है।

7. सामाजिक परिवर्तन की दशा में सांस्कृतिक परिवर्तन होना एक स्वाभाविक घटना है। इसके विपरीत, सांस्कृतिक परिवर्तन होने से सामाजिक संरचना में परिवर्तन होना आवश्यक नहीं होता यद्यपि इसकी एक सम्भावना जरूर की जा सकती है।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन में सम्बन्ध–

पी0 बी0 हार्टन का कथन है कि यह दोनों एक दूसरे का कारण तथा परिणाम है।

उदाहरण– हमारे समाज में निम्न तथा उच्च जातियों अथवा स्त्रियों और पुरूषों के बीच बढ़ती हुई समानता के विचार साधारणतया सांस्कृतिक परिवर्तन की दशा को स्पष्ट करते हैं। इसके बाद भी ऐसे सभी परिवर्तन हमारे सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार जब व्यक्तियों की प्रस्थितियों, भूमिकाओं तथा सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन होता है तब संस्कृति से सम्बन्धित हमारी मनोवृत्तियों और विश्वास भी बदलते लगते हैं।

मैरिल का विचार है कि अधिकांश सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनों का परिणाम होते हैं लेकिन संस्कृति में होने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिये– जनसंचार के विभिन्न साधन जैसे प्रेस, टेलीविजन, रेडियो तथा सिनेमा आदि प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित होने के कारण संस्कृति के अंग है। आज ग्रामीण जीवन में होने वाले सामाजिक परिवर्तन एक बड़ी सीमा तक जनसंचार के साधनों द्वारा प्रभावित होते हैं।

निष्कर्ष–

स्पष्ट है कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के बीच कोई स्पष्ट भेद कर सकना अत्यधिक कठिन है। यह दोनों एक–दूसरे के पूरक तथा एक दूसरे का कारण तथा परिणाम है।

सामाजिक परिवर्तन के सामान्य कारक–

1. जैविकीय कारक

2. जनसंख्यात्मक कारक

3. प्रौद्योगिकी कारक

4. सांस्कृतिक कारक

5. मनोवैज्ञानिक कारक

6. आर्थिक कारक

7. राजनैतिक कारक

8. भौगोलिक कारक

9. सामाजिक सुधार

अध्याय–2

सामाजिक परिवर्तन के जैविकीय कारक

जैविकीय कारक का अर्थ–

जैविकीय कारक का तात्पर्य उनसे है जो हमें वंशानुक्रमण में माता–पिता द्वारा प्राप्त होते है। हमारा स्वास्थ्य, मानसिक योग्यता, प्रजनन दर, जीवन–अवधि, स्त्री–पुरूष का अनुपात व जन्म–दर तथा मृत्यु–दर आदि जैविकीय कारकों से निर्धारित होते हैं। इन तत्वों का सामाजिक परिवर्तन से गहरा सम्बन्ध है।

जैविकीय कारकों का सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्ध–

1. आनुवंशिकता–

आनुवंशिकता एक जैविकीय तथ्य है जो जनन विद्या के सिद्धान्तों पर आधारित है। गिस्बर्ट के शब्दों में, ''प्रकृति में विभिन्न पीढ़ियों का प्रत्येक कार्य माता–पिता से उनके बच्चों में कुछ जैविक ओर मानसिक गुणों का संचारित होना है जिसे आनुवंशिकता कहा जाता है।''

वंश का प्रभाव जानने के लिये यदि हम एक लाल और एक सफेद गुलाक की कलम को मिलाकर उससे एक नया पौधा विकसित करे तो इसमे आने वाले फूलों का रंग लाल और सफेद का मिश्रण अर्थात् गुलाबी होगा।

जीववादियों ने यह निष्कर्ष दिया कि बच्चे को अपने माता–पिता से जो वाहकणु अथवा जीनी प्राप्त होते हैं, उनके मूल रूप मे एक लम्बे समय तक कोई परिवर्तन नहीं होता तथा इन्हीं वाहकणुओं के द्वारा बच्चे की सभी शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं का निर्धारण होता है।

विभिन्न अध्ययनों के आधार पर अनेक विद्वान यह मानते रहे है कि जनसंख्या के विभिन्न गुणों से लोगों की शारीरिक क्षमता, बौद्धिक योग्यता तथा शारीरिक लक्षणों को प्रभावित करने में पर्यावण की तुलना में आनुवंशिकता का प्रभाव कई गुना अधिक होता हे। जीववादियों ने यह भी निष्कर्ष दिया कि वाहकणुओं के संयोग में होने वाला परिवर्तन, जलवायु सम्बन्धी परिवर्तन तथा प्रजातीय मिश्रण आदि ऐसी दशाये है जिनके फलस्वरूप आनुवंशिक विशेषतायें बदलने लगती है। जब विभिन्न समूहों की शारीरिक और मानसिक विशेषताओं में परिवर्तन होता है, तब व्यवहार के नये ढंगों को प्रोत्साहन मिलने से सामाजिक परिवर्तन की दशा उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की विवेचना में आनुवंशिक दशाओं का एक विशेष योगदान है।

2. स्वास्थ्य का स्तर–

स्वास्थ्य का स्तर, जिसे अधिकांश जीववादी किसी न किसी रूप में आनुवंशिकता से ही सम्बन्धित मानते है, लोगों की कार्यक्षमता तथा बौद्धिक स्तर को प्रभावित करता है।

स्वस्थ एवं योग्य व्यक्ति आविष्कार के द्वारा समाज में परिवर्तन लाने में सक्षम होते है जबकि कमजोर व दुर्बल व्यक्ति का समाज में विशेष योगदान नहीं होता।

जिन समाजों में स्वास्थ्य का स्तर बुरा होने के कारण जन्म–दर तथा मृत्यु–दर अधिक होती है, वहाँ सामाजिक नियम परम्परावादी और अक्सर रूढ़िवादी होते है। इसके फलस्वरूप सामाजिक संरचना में परिवर्तन की संभावना बहुत कम रह जाती है।

3. मानसिक योग्यता–

मानसिक योग्यता जैविकीय विशेषता है जो अधिकांशतः माता–पिता के द्वारा वंशानुक्रमण की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति को प्राप्त होता है। महान वैज्ञानिकों की खोज, संगीतकारों की रचनायें, समाज सुधारकों की योजनायें व नेताओं का नेतृत्व आदि मानसिक योग्यता के आधार पर ही समाज व संस्कृति में परिवर्तन लाने में सहायक हुए हैं।

4. जन्म–दर तथा मृत्यु–दर

जन्म–दर अधिक–

जनसंख्या के अनुपात में आजीविका के साधनों में होने वाली वृद्धि बहुत कम–समाजों में गरीबी, बेकारी, बीमारी, भ्रष्टाचार, अपराध, कार्यक्षमता में कमी आदि में वृद्धि, सभी को शिक्षा की सुविधायें न मिल पाना। यह सभी दशायें सामाजिक परिवर्तन को रोकने में सहायक होती है।

जन्म–दर कम–

सभी लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा आजीविका के अवसर मिलते है। सामाजिक संगठन सुदृढ़ होने लगता है तथा सामाजिक परिवर्तन की गति तेज होती है।

मृत्यु दर कम–

समाज में वृद्ध व्यक्तियों की संख्या बढ़ती है, परिवर्तन की गति कम हो जाती है क्योंकि प्रौढ़ व्यक्तियों की प्रवृत्ति यथास्थिति को बनाये रखने की होती है।

मृत्यु–दर अधिक–

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में तेजी से वृद्धि होती है। ऐसे मूल्यों तथा व्यवहारों का प्रभाव बढ़ने लगता है जो अधिक उपयोगी नहीं होते।

वर्तमान समय में चिकित्सा विज्ञान में प्रगति हो जाने से जन्म–दर नियन्त्रित करना संभव हो गया है तथा जीवन अवधि में भी वृद्धि हुई है। इसके बाद भी अधिकांश समाजों में जन्म–दर तथा मृत्यु–दर पर मनुष्य का नियन्त्रण बहुत कम होने के कारण इसे एक जैविकीय कारक माना जाता है।

5. स्त्री–पुरूष का अनुपात–

चिकित्सा विज्ञान की प्रगति के बाद भी स्त्री–पुरूष अनुपात पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं।

यदि समाज में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या अधिक हो जाती है तो बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन होता है और स्त्रियों की स्थिति निम्न बन जाती है।

यदि समाज में स्त्रियों की तुलना में पुरूषों की संख्या अधिक हो जाती है तो बहुपति विवाह का प्रचलन बढ़ जाता है, परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति उच्च हो जाती है।

इस प्रकार स्त्री–पुरूष के अनुपात में परिवर्तन समाज में परिवर्तन लाता है।

6. जीवन–अवधि–

जिस समाज की औसत आयु कम है, वहाँ अनुभवी मनुष्य की कमी होती है अतः सामाजिक आविष्कारों की संभावनायें कम जो जाती है।

जहाँ औसत आयु अधिक है, वहाँ प्रगति व विकास अधिक देखे जा सकते हैं।

7. आयु– समूह–

अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या अधिक हो तो समाज में परम्परा का महत्व बढ़ेगा तथा नीवनता के प्रति रूचि में कमी आयेगी।

इसके विपरीत युवाओं में साहस, उद्यमशीलता एवं विकासोन्मुख के गुण अधिक है, इन गुणों के फलस्वरूप परिवर्तन की शक्ति प्रबल होती है।

8. कुल आबादी–

अधिक आबादी समाज में गरीबी, बेकारी, बीमारी एवं अपराध उत्पन्न करती है। कम आबादी प्राकृतिक व सामाजिक साधनों का उचित उपयोग नहीं होने देती। सन्तुलित आबादी सामाजिक प्रगति एवं विकास का आधार बनती।

इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की गति मन्द होगी या तीव्र या मध्यम यह उस समाज की कुल आबादी पर निर्भर करता है।

जैविकीय कारकों के प्रभाव का मूल्यांकन–

आगर्बन ने लिखा है कि मानव–समाज में मृत्यु दर केवल प्राकृतिक दशाओं से ही प्रभावित नहीं होती। चिकित्सा विज्ञान में प्रगति होने से मानव की जीवन–अवधि पहले की तुलना में अधिक हो गयी तथा मनुष्य प्रकृति से संघर्ष करने में अधिक सक्षम हो गया।

सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के साथ जन्म–दर पर नियंत्रण रखने के तरीके जैसे परिवार नियोजन, विलम्ब–विवाह, हिंसा के विरूद्ध कानून तथा चिकित्सा सुविधायें प्रभावपूर्ण हुये।

शिक्षा तथा रहन–सहन के स्तर में वृद्धि से जन्म–दर तथा मृत्यु–दर दोनों में कमी लायी जा सकती है।

एक दुर्बल तथा अपंग व्यक्ति भी समाज में अनुकूलन करके लम्बे समय तक जीवित रह सकता है।

सामाजिक परिवर्तन की विवेचना में जैविकीय कारकों का महत्व कम होता जा रहा है– इसको अधिक से अधिक एक अप्रत्यक्ष कारक के रूप में ही मान्यता दी जा रही है। जैविकीय कारकों की तुलना में आज व्यक्ति को सामाजिक दशाओं से अनुकूलन करना अधिक आवश्यक है।

अध्याय–3

सामाजिक परिवर्तन के जनांकिकीय या जनसंख्यात्मक कारक

जनसंख्यात्मक कारक का अर्थ–

सोरोकिन ने जनांकिकीय कारक को परिभाषित करते हुए कहा है, ''कारक का अर्थ किसी समाज की जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि अथवा ह्रास होता है।''

इस प्रकार जनांकिकीय कारक से हम मुख्य रूप से जनसंख्या के परिमाणात्मक पक्ष को ही सम्मिलित करते हैं, गुणात्मक पक्ष को बहुत कम अर्थात् हमारा उद्देश्य केवल यही स्पष्ट करना होता है कि जनसंख्या के आकार और विशेषताओं में होने वाले परिवर्तन समाज को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। हम इस बात की विवेचना नहीं करते कि जनसंख्या में कौन–कौन से गुण होने चाहिए।

जनसंख्या एवं सामाजिक परिवर्तन–

1. जनसंख्या के आकार में परिवर्तन का प्रभाव–

जनसंख्या के आकार को निम्नांकित दो कारक प्रभावित करते हैं–

(i) जन्म–दर तथा मृत्यु–दर

(ii) आप्रवास एवं उत्प्रवास

जन्म–दर में वृद्धि जनसंख्या के आकार में वृद्धि करती है और मृत्यु–दर में वृद्धि होने से जनसंख्या के आकार में कमी हो जाती है। जन्म–दर में वृद्धि अनेक कारकों से प्रभावित होती है जैसे– मनुष्य की प्रजनन क्षमता में वृद्धि, रोगों से मुक्ति, विवाह की आयु में कमी, प्रकृति से अधिक अनुकूलन कर सकने की क्षमता आदि। जन्म–दर में होने वाली वृद्धि चाहे किसी भी कारण से प्रभावित हो लेकिन इतना अवश्य है कि जन्म–दर में वृद्धि होने से जनसंख्या में वृद्धि होती है लेकिन उसके अनुपात में जीविका के साधनों में एकाएक वृद्धि नहीं हो पाती। इससे गरीबी, बीमारी व बेकारी की स्थिति उत्पन्न होती है, कार्यक्षमता में कमी होती है, जीवन–स्तर गिरता है, जीविका के अधिकाधिक साधन प्राप्त करने के लिये संघर्षों की मात्रा में वृद्धि होती है, अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार बढ़ता है और इस प्रकार समाज के संगठन को बनाये रखना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार जन्म–दर में होने वाली कमी भी न्यून उत्पादन, प्राकृतिक शक्तियों के अपर्याप्त उपभोग तथा स्त्री–पुरूष के अनुपात में भिन्नता जैसी दशाएँ उत्पन्न करके सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करती है।

मृत्यु–दर का सम्बन्ध दीर्घायु से है। समाज में यदि मृत्यु–दर कम होती है तो व्यक्ति दीर्घायु होते है और मृत्यु–दर में वृद्धि होने से समाज में वृद्ध व अनुभवी व्यक्तियों की कमी की समस्या उत्पन्न होती है। मृत्यु–दर में कमी होने का कारण स्वास्थ्य की उत्तम सुविधायें और न्यूनतम दुर्घटनाएँ। इससे वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होती है जो परम्पराओं

और अनुशासन को महत्व देकर भी परिवर्तन को रोकने का प्रयत्न करते हैं। इसके साथ ही ऐसे समाजों में अनुभवी व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप सामाजिक संघर्षों को रोकना सरल हो जाता है। मृत्यु–दर में कमी होने से परिवर्तन की गति धीमी पड़ जाती है, जबकि मृत्यु–दर अधिक होने से सामाजिक परिवर्तन में भी तीव्रता की संभावना अधिक हो जाती है।

आप्रवास का अर्थ अन्य स्थानों से व्यक्तियों का हमारे समाज में प्रवेश करना और उत्प्रवास का अर्थ हमारे समाज के व्यक्तियों का दूसरे समाजों में चले जाना। आप्रवास से किसी समाज की जनसंख्या में वृद्धि होती है और तब वह सारी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है जो अधिक जन्म–दर से उत्पन्न होती है लेकिन इससे कही बड़ा प्रभाव प्रजातीय मिश्रण के क्षेत्र में स्पष्ट होता है। आप्रवास के कारण एक समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है जिनकी संस्कृति, प्रजातीय विशेषतायें, सामाजिक मूल्य तथा जीवन–स्तर वहाँ के मूल निवासियों की विशेषताओं से भिन्न होता है। परिणामस्वरूप दोनों समूहों की मिली–जुली संस्कृति के कारण व्यवहार के नये ढंग विकसित होने लगते हैं। जैविकीय गुणों के मिश्रण हो जाने से व्यक्तियों की मानसिक और शारीरिक विशेषतायें भी बदल जाती है। हमारे समाज में पाकिस्तान, श्रीलंका, तिब्बत, म्यांमार और पूर्वी एशिया के अनेक स्थानों से आने वाले व्यक्तियों के

कारण परिवर्तन की जो स्थिति उत्पन्न हुयी है वह आप्रवास के प्रभाव को स्पष्ट करती है।

उत्प्रवास अर्थात् हमारे समाज के व्यक्ति द्वारा दूसरे समाज में चले जाने से जनसंख्या में कमी होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन के साधनों से पुनः अभियोजन करने की समस्या उत्पन्न होती है। कुछ विशेष सेवाओं से सम्बन्धित व्यक्तियों की कमी हो जाने से हमें अपनी आवश्यकताओं में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। सामान्य रूप से उत्प्रवास पुरूषों द्वारा अधिक संख्या में होने के कारण कुछ समय के लिये स्त्रियों के अनुपात में वृद्धि होती है।

12. जनसंख्या सम्बन्धी संरचना का प्रभाव–

1. आयु–समूह–

जनसंख्या में यदि अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या अधिक हो तो अनुशासन के कठोर नियमों द्वारा परम्परागत विचारों की रक्षा की जाती है, नवीनता को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता तथा जोखिम– भरे कार्यों के अभाव में विकास की गति बहुत धीमी हो जाती है। यदि जनसंख्या के रूप में परिवर्तन होने से वृद्धों की अपेक्षा युवकों की संख्या में वृद्धि हो जाये, तब नवीनता के प्रति आकर्षण बढ़ेगा, धर्म में तक्र का समावेश हो जायेगा, परम्पराओं को बहुत कम महत्व मिलेगा तथा सैन्य शक्ति का विस्तार होगा।

2. स्त्री–पुरूष का अनुपात–

यदि किसी समाज का स्त्री–पुरूष अनुपात पुरूषों के पक्ष में है तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों की प्रधानता रहेगी।

यदि वह अनुपात स्त्रियों के पक्ष में है जैसा कि पश्चिमी देशों में है, तो स्त्रियों का सामाजिक पद, आर्थिक सेवायें तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व किसी भी अर्थ में पुरूषों से कम महत्वपूर्ण नहीं होगा।

3. वैवाहिक प्रथाएँ–

विवाह एक प्रमुख सामाजिक संस्था है तथा इसके अन्तर्गत होने वाले परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण है। यदि बहुपत्नी विवाह तथा बाल–विवाह के स्थान पर एक–विवाह तथा विलम्भ विवाह का प्रचलन हो जाये तो स्त्रियों की स्थिति में आश्चर्यजनक रूप से सकारात्मक परिवर्तन होने लगे।

3. जनसंख्या तथा आर्थिक परिवर्तन–

आर्थिक जीवन का सम्बन्ध विशेष रूप से तीन तथ्यों से है–

(i) उत्पादन की विधि

(ii) सम्पत्ति के स्वामित्व का रूप

(iii) आर्थिक समृद्धता

जनसंख्या की वृद्धि से उत्पादन की नयी–नयी प्रविधियों का विकास होता है, उत्पादन पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में होने लगता है। इसके

परिणामस्वरूप समाज में नये–नये आविष्कार होते है और इस तरह ज्ञान का अधिक प्रसार होता है।

जिन स्थानों पर जनसंख्या का घनत्व कम होता है, वहाँ साधारणतया सम्पत्ति पर सामूहिक स्वामित्व होता है, जबकि घनी जनसंख्या वाले स्थानो ंपर सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व पाया जाता है। इसका कारण यह है कि घनी आबादी वाले प्रदेश में गहरी खेती और अधिक उत्पादन करना आवश्यक होता है जो सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व द्वारा ही संभव है।

आर्थिक समृद्धता और जनसंख्या के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये दो मत पाये जाते हैं। एक ओर माल्थस का विचार है कि जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि होने से अति जनसंख्या की समस्या उत्पन्न होती है और इस प्रकार संख्या अधिक होने से आर्थिक समृद्धता में बाधा पहुँचती है। दूसरी ओर, फ्रांस के कुछ विद्वानों का मत है कि किसी समाज की आर्थिक समृद्धता जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि होने से ही संभव है। वास्तविकता यह है कि कम साधनों और अधिक जनसंख्या की स्थिति में माल्थस का सिद्धान्त लागू होता है, जबकि साधन अधिक होने पर और उनकी तुलना में जनसंख्या कम होने पर दूसरा विचार अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

4. सामाजिक संगठन पर जनसंख्या का प्रभाव–

सामाजिक संगठन में हम मुख्य रूप से तीन पक्षों को सम्मिलित करते हैं–

(i) सामाजिक विभेदीकरण

(ii) सामाजिक स्तरीकरण

(iii) पारिवारिक संगठन

सामाजिक विभेदीकरण का अर्थ है समाज में एक–दूसरे से भिन्न सामाजिक, प्रजातीय, सांस्कृतिक और आर्थिक विशेषताओं वाले समूहों का होना। कुछ विद्वानों का विचार है कि नगरीय और ग्रामीण समूहों, विभिन्न वर्गों और स्थिति समूहों की विभिन्नता का सबसे महत्वपूर्ण कारण समाज में जनसंख्या की वृद्धि होना।

सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ है समाज का एक–दूसरे से भिन्न स्थितियों वाले अनेक स्तरों में बँटा होना। अधिक जनसंख्या के कारण समाज में निरन्तर नये–नये स्तरों का निर्माण होता रहता है।

पारिवारिक संगठन तथा जनसंख्या के सम्बन्ध को स्पष्ट करने में मजरेला ने महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिये है। आपके अनुसार छोटे समूहों तथा प्राकृतिक सुविधाओं से उत्पन्न प्रदेशों में बहु–विवाह की प्रथा को अधिक उपयोगी समझा जाता है जबकि नगरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होने के कारण जीविका उपार्जित करना कठिन कार्य होता है। इसलिये वहाँ एक विवाह के द्वारा परिवार को संगठित किया जाता है।

5. राजनीति एवं जनसंख्या–

अनेक विद्वानों ने यह स्पष्ट किया है कि विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थायें (जैसे– राजतंत्र, प्रजातंत्र आदि और विभिन्न सामाजिक संस्थायें जैसे दासता, समान्तवाद, वर्ग–समाज, समतावादी समाज), जनसंख्या के आकार और घनत्व द्वारा प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिये, जनसंख्या का आधिक्य होने से एक बहुत बड़ा भाग बिल्कुल अनुपयोगी और दूसरों के आदेशों का अन्धानुकरण करने वाला हो जाता है जिसका अनुचित लाभ उठाकर कुछ व्यक्ति समाज में अधिक शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। फलस्वरूप तानाशाही व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलता है। जनसंख्या सीमित होने से सभी को अपने विकास के प्रचुर अवसर प्राप्त होते हैं और शिक्षा में वृद्धि होने से प्रजातन्त्र का विकास होता है। इसी प्रकार अधिक जनसंख्या दासता और सामन्तवाद को जन्म देती है, जबकि जनसंख्या सीमित रहने से एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज की स्थापना होती है।

6. युद्ध पर जनसंख्या का प्रभाव–

माल्थस ने एक नियम के रूप में यह विचार व्यक्त किया था कि युद्ध प्राकृतिक रूप से जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण रखते हैं। हेराल्ड ने विचार व्यक्त किया है कि जनसंख्या की वृद्धि के कारण अधिक आर्थिक साधनों को प्राप्त करने की आवश्यकता ही युद्धों का कारण रही है।

7. जनसंख्या तथा क्रान्ति–

क्रान्ति और जनसंख्यात्मक परिवर्तन एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। कार्ली ने महत्वपूर्ण निष्कर्ष देते हुऐ कहा कि जनसंख्या में अधिक ह्रास या वृद्धि होने से समाज के विभिन्न वर्गों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में भी उतार–चढ़ाव होता है। इस प्रक्रिया में निम्न वर्ग के व्यक्तियों को उच्च वर्ग में जाने से रोकने के जितने अधिक प्रयत्न किये जाते हैं, क्रान्ति की सम्भावना उतनी ही अधिक बढ़ जाती है। यह भी कहा जाता है कि जनसंख्या में अधिक वृद्धि होने पर सभी व्यक्ति आवश्यक सुविधायें प्राप्त नहीं कर पाते। इसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों में आन्तरिक तनाव उत्पन्न होता है और दूसरी ओर, राजनीतिक संगठन के प्रति उनके मन में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। ये दोनों ही परिस्थितियाँ क्रान्ति का कारण बन जाती है।

8. जनसंख्या और वैचारिक परिवर्तन–

कुछ विद्वानों का विचार है कि जनसंख्या का आकार और घनत्व में वृद्धि होने से सामाजिक विभेदीकरण में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप व्यक्ति समूह के नियन्त्रण से मुक्त हो जाना है। इस स्थिति में व्यक्ति जाति तथा प्रजाति की संकीर्णता से निकलकर सम्पूर्ण मानवता के बारे में सोचने लगता है। वर्तमान में भी जनसंख्या के आकार और घनत्व में अधिक वृद्धि होने के कारण ही प्रजातन्त्र का सबसे अधिक विकास हो सका। यह कथन इस तथ्य से भी स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता, समानता

तथा न्याय की विचारधारा गाँवों की अपेक्षा नगरों में अधिक देखने को मिलती है क्योंकि नगरों में जनसंख्या का आकार और घनत्व गाँवों से कही अधिक होता है।

9. जनसंख्या का समाज की प्रगति और विनाश से सम्बन्ध–

जनांकिकी सम्प्रदाय ने समाज के उद्विकास अर्थात् इसकी उत्पत्ति, विकास तथा विनाश को कुछ जनसंख्यात्मक नियमों द्वारा स्पष्ट किया है। इसमें सबसे प्रमुख सिद्धान्त रोमन समाजवादी प्रो0 गिनी ने प्रस्तुत किया है। गिनी ने समाज के उद्विकास को एक चक्रीय प्रक्रिया के द्वारा स्पष्ट किया है जिसमें जनसंख्यात्मक कारणों के कारण विनाश और विकास की स्थिति उत्पन्न होती रहती है।

जनसंख्यात्मक कारकों के प्रभाव का मूल्यांकन–

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जनसंख्यात्मक कारक सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किन्तु उन्हें सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र कारण मान लेना बहुत बड़ी भूल होगी। स्वयं जनसंख्यात्मक कारक, जैसे– जन्म–दर, मृत्यु–दर, जनसंख्या की गतिशीलता एवं वैवाहिक स्तर आदि भी सामाजिक नीति एवं सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होते है। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी देश की जनसंख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता, फिर भी वहाँ सामाजिक परिवर्तन घटित होते हैं। पाकिस्तान व दक्षिण अफ्रीका के कई देशों में सत्ता परिवर्तन के साथ नवीन सामाजिक परिवर्तन आये। भारत में भी 1947 में आजादी के बाद

अनेक सामाजिक परिवर्तन आये जिनका कारण प्रजातन्त्र, औद्योगीकरण, पश्चिमी प्रभाव, यातायात के नवीन साधन, नवीन विचार आदि है न कि मात्र जनसंख्या वृद्धि।

स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन में केवल जनसंख्यात्मक कारणों की ही महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है।

जनसंख्या वृद्धि को सदैव युद्ध व क्रान्ति से सम्बन्धित करना भी उचित नहीं है। विचार, विश्वास, साहित्य, सत्ता परिवर्तन, आर्थिक दशायें आदि भी क्रान्ति के लिये उत्तरदायी है। संसार की अनेक महान क्रान्तियाँ जनसंख्या में बिना कोई वृद्धि हुये ही उत्पन्न हो गयी। भारत में जनसंख्या वृद्धि होने पर भी यहाँ की सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण जल्दी ही किसी क्रान्ति की सम्भावना नहीं की जा सकती।

जहाँ तक युद्ध और जनसंख्या के सम्बन्ध को सिद्ध करने का प्रश्न है, इसे किसी भी प्रकार से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। पिछले 50 वर्षों में संसार में लगभग सभी समाजों में जनसंख्या में वृद्धि हुई है, लेकिन इस वृद्धि के कारण किसी बड़े युद्ध को प्रोत्साहन न मिलकर स्थायी शान्ति के लिए प्रयत्न किये जा रहे है।

निष्कर्ष–

सामाजिक परिवर्तन में जनसंख्यात्मक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किन्तु उन्हें सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र कारण मान लेना अथवा आवश्यकता से अधिक महत्व देना ठीक नहीं है।

अध्याय–4

सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक

आर्थिक कारक का अर्थ–

साधारणतया यह समझा जाता है कि प्रति व्यक्ति आय, लोगों का जीवन स्तर, आथ्रिक समस्यायें, आर्थिक आवश्यकताएँ तथा सम्पत्ति का संचय आदि वे दशायें हैं जिन्हें आर्थिक कारक कहा जा सकता है। वास्तव में यह दशायें स्वयं आर्थिक कारक न होकर आर्थिक कारकों के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली कुछ प्रमुख दशायें हैं।

आर्थिक कारकों का तात्पर्य उन आर्थिक संस्थाओं तथा शक्तियों से होता है जो किसी समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करती है।

इस दृष्टिकोण से उपभोग की प्रकृति, उत्पादन की प्रणालियाँ, वितरण की व्यवस्था, आर्थिक नीतियाँ, श्रम विभाजन की प्रकृति, आर्थिक प्रतिस्पर्धा तथा औद्योगीकरण वे प्रमुख आर्थिक कारक हैं जो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को एक विशेष रूप से प्रभावित करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक कारकों की भूमिका–

1. उपभोग की प्रकृति–

किसी समाज में व्यक्ति किन वस्तुओं का उपभोग करते हैं, तथा उपभोग का स्तर क्या है, यह तथ्य एक बड़ी सीमा तक सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। उपभोग की प्रकृति में होने वाला कोई भी परिवर्तन

सामाजिक सम्बन्धों और स्तरीकरण की व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न करके सामाजिक जीवन में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। किसी समाज में जब अधिकांश व्यक्तियों को एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखने के लिये उपभोग की केवल सामान्य सुविधायें ही प्राप्त होती है तो वहाँ परिवर्तन की गति बहुत सामान्य होती है। इसके विपरीत, यदि अधिकांश व्यक्ति उपभोग की सामान्य सुविधायें पाने से भी वंचित रहते हैं तो धीरे–धीरे जनसामान्य का असंतोष इतना बढ़ जाता है कि वे सम्पूर्ण सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करते हैं। व्यक्तियों का जीवन स्तर यदि सामान्य से अधिक उँचा होता है तो अधिकांश व्यक्ति परम्परागत व्यवहार प्रतिमानों, प्रथाओं और धार्मिक नियमों को अपने लिये आवश्यक नहीं समझते। इसके फलस्वरूप वहाँ परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है।

2. उत्पादन की प्रणालियाँ–

उत्पादन की प्रणाली का तात्पर्य मुख्य रूप से उत्पादन के साधनों, उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन के उद्देश्य से है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन की प्रणाली सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण है। उत्पादन के साधन अथवा उपकरण जब बहुत सरल और परम्परागत प्रकृति के थे, तब समाजों की प्रकृति भी सरल थी। जैसे–जैसे परम्परागत प्रविधियों की जगह उन्नत ढंग की मशीनों के द्वारा उत्पादन किया जाने लगा, समाज की उच्च और निम्न वर्ग की आर्थिक असमानताएँ बढ़ने

लगी। यह आर्थिक असमानताएँ वर्ग–संघर्ष को जन्म देकर सामाजिक परिवर्तन का ही नहीं बल्कि क्रान्ति तक का कारण बन जाती है। जब कभी भी उत्पादन की प्रणालियाँ बदलती है (जैसे हथकरघों की जगह मशीनों से कपड़े का उत्पादन होने लगे अथवा हल और फावड़े के स्थान पर ट्रैक्टर से खेतों की जुताई होने लगे) तो उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों के आर्थिक सम्बन्ध भी बदलने लगते हैं। इससे सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने लगता है।

3. वितरण की व्यवस्था–

प्रत्येक समाज में वितरण की एक ऐसी व्यवस्था अवश्य पायी जाती है जिसके द्वारा राज्य अथवा समूह अपने साधन विभिन्न व्यक्तियों को उपलब्ध करा सके। वितरण की यह व्यवस्था या तो राज्य के नियन्त्रण में होती है अथवा व्यक्तियों को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वे प्रतियोगिता के द्वारा अपनी कुशलता के अनुसार स्वयं ही विभिन्न साधन प्राप्त कर लें। वितरण की इन दोनों में से किसी भी एक व्यवस्था के रूप में होने वाला परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया पैदा करता है। प्राचीन समय में वस्तु–विनिमय का प्रचलन था जिसके फलस्वरूप व्यक्तियों के बीच प्राथमिक सम्बन्ध थे तथा लोगों की आवश्यकतायें बहुत कम थी। वस्तु–विनिमय की जगह जब मुद्रा के द्वारा वस्तुओं को खरीदा और बेचा जाने लगा तो इससे सम्पत्ति के संचय को प्रोत्साहन मिला, व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई तथा प्रत्येक व्यक्ति विशेषीकरण के द्वारा अधिक से अधिक

लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। व्यक्तियों के इन जटिल व्यवहारों पर नियंत्रण लगाने के लिए राज्य के कानूनों का प्रभाव बढ़ने लगा। पूँजी और आर्थिक साधनों का असमान वितरण होने से विभिन्न आर्थिक वर्गों के बीच संघर्ष बढ़ते है। यह दशा भी सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देती है।

4. आर्थिक नीतियाँ–

प्रत्येक राज्य कुछ ऐसी आर्थिक नीतियाँ बनाता है जिसके द्वारा उपभोग, उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था को सन्तुलित बनाया जा सके। आर्थिक नीतियाँ केवल आर्थिक सम्बन्धों को ही व्यवस्थित नहीं बनाती बल्कि सामाजिक परिवर्तन को रोकने अथवा उसमें वृद्धि करने में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। उदाहरण के लिये, यदि राज्य स्वतंत्र अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण लगाकर श्रमिकों की मजदूरी, कार्य की दशाओं तथा कल्याण सुविधाओं के बारे में कानून बनाकर श्रमिकों को संरक्षण प्रदान करता है तो समाज में स्तरीकरण की व्यवस्था बदलने लगती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की जगह राज्य द्वारा यदि सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना की जाने लगती है तो इससे भी आर्थिक संरचना में और फिर सामाजिक संरचना में परिवर्तन उत्पन्न होने लगते हैं। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा जब आर्थिक और सामाजिक विकास के नये कार्यक्रम लागू किये गये तो हमारी समाज की सामाजिक संरचना तथा व्यक्तियों के विचारों तथा मनोवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न हुए।

5. श्रम–विभाजन–

श्रम– विभाजन एक ऐसी दशा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति से एक विशेष कार्य के ज्ञान द्वारा आजीविका उपार्जित करने की आशा की जाती है। इसका तात्पर्य है कि श्रम–विभाजन में सभी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये एक–दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं। दुर्खीम ने इसी दशा को सावयवी एकता कहा है। समाज में जब किसी तरह का श्रम–विभाजन नहीं होता तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करता है। इसके फलस्वरूप लोगों का जीवन आत्मनिर्भर अवश्य बनता है लेकिन लोग धर्म, जाति एवं समुदाय के बन्धनों स बाहर नहीं निकल पाते। श्रम–विभाजन के द्वारा सभी व्यक्ति एक विशेष वस्तु के निर्माण में एक–दूसरे को सहयोग देने के कारण परस्पर निर्भर बने रहते हैं। इसके बाद भी श्रम–विभाजन की दशा व्यक्तिवादिता अथवा वैयक्तिक स्वार्थों में वृद्धि करके सामाजिक जीवन को जटिल बनाने लगती है। राज्य के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि योजनाबद्ध रूप से व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियंत्रण लगाया जाये। सामाजिक नियंत्रण में परिवर्तन होने से जब सामाजिक संस्थाओं का रूप बदलने लगता है तो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी तेज हो जाती है।

6. आर्थिक प्रतिस्पर्धा–

प्रतिस्पर्धा यद्यपि एक सामाजिक प्रक्रिया है लेकिन जब यह प्रक्रिया आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित हो जाती है तब इसी को हम आर्थिक

प्रतिस्पर्धा कहते हैं। जान्सन का कथन है कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की तुलना में अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगता है। इसके फलस्वरूप व्यक्तियों की कार्यकुशलता अवश्य बढ़ती है लेकिन पारस्परिक द्वेष और विरोध में भी बहुत वृद्धि होती है। प्रतिस्पर्धा की दशा में विभिन्न व्यक्ति अथवा समूह समाज विरोधी व्यवहारों के द्वारा भी अपने उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयत्न करने लगते हैं। समाज में आर्थिक प्रतिस्पर्धा जितनी अधिक बढ़ती है, राज्य के लिये भी यह आवश्यक हो जाता है कि लोगों के व्यवहारों पर नियन्त्रण लगाने के लिए सामाजिक संस्थाओं और कानूनों में उपयोगी परिवर्तन किये जाये।

7. औद्योगीकरण–

अनेक विद्वानों ने औद्योगीकरण को सामाजिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक कारक मानते हैं। औद्योगिकरण का तात्पर्य बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना के द्वारा मशीनों की सहायता से बड़ी मात्रा में उत्पादन करना। औद्योगीकरण से छोटे–छोटे कस्बे बड़े औद्योगिक नगरों में परिवर्तित होने लगते हैं। नये व्यवसाय में वृद्धि से सभी धर्मों, जातियों और वर्गों के लोगों द्वारा किये जाने वाले कार्य की प्रकृति में परिवर्तन होने लगता है। इसके बाद भी व्यक्तियों के सम्बन्ध इतने औपचारिक बन जाते हैं कि वे अपने लाभ को ही सर्वोपरि मानने लगते हैं। उद्योगों में बड़े–बड़े श्रमिक संघों की स्थापना होती है। कुटीर और लघु उद्योगों पर प्रतिकूल

प्रभाव पड़ने से औद्योगीकरण लाखों लोगों के सामने बेरोजगारी की जटिल समस्या उत्पन्न कर देता है। मशीनों से कार्य करने से उत्पन्न होने वाली असुरक्षा, मानसिक तनाव तथा आर्थिक कठिनाइयाँ पारिवारिक समस्यायें भी उत्पन्न करती हैं।

निष्कर्ष–

आर्थिक कारक सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

अध्याय–5

सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकी कारक

प्रौद्योगिकी का अर्थ–

प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत उन प्रविधियों को लिया जाता है जो हमें भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।

प्रविधि में विभिन्न प्रकार के उपकरण तथा मानवीय ज्ञान आता है।

प्रौद्योगिकी का तात्पर्य आधुनिक युग में तीव्र गति से होने वाले यन्त्रीकरण से नहीं है। प्रौद्योगिकी तो प्रत्येक युग और समाज में रही है। चाहे कोई समाज सरल हो या जटिल, चाहे वह सभ्य समाज हो या असभ्य, चाहे वह परम्परागत समाज हो या आधुनिक, प्रत्येक की अपनी एक प्रौद्योगिकी होती है जो लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में योग देती है।

आगबर्न ने कहा है कि, ''प्रौद्योगिकी का अर्थ किसी भी प्रविधि से है।''

प्रो0 सरन ने कुछ उदाहरण दिये हैं। आपने बताया कि यदि मकान बनाना हमारा उद्देश्य है तो मकान बनाने के लिये काम में ली जाने वाली सामग्री इसका प्रत्यक्ष साधन हुयी। इसका अप्रत्यक्ष साधन मकान बनाने में प्रयुक्त सामग्री को बनाने वाले उपकरण तथा मकान निर्माण की कला हुयी।

इस प्रकार सामग्री बनाने के उपकरण तथा मकान निर्माण की कला प्रौद्योगिकी हुयी।

मैकाइवर तथा पेज ने बताया कि प्रौद्योगिकी मूर्त, माप–योग्य तथा प्रदर्शन–योग्य है और इसलिये प्रौद्योगिकी के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिक कारकों की भूमिका–

1. यन्त्रीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन–

यन्त्रीकरण का तात्पर्य मशीनों के अधिकाधिक उपयोग के द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होता है। यह यन्त्रीकरण ही वर्तमान युग में वह सर्वप्रमुख प्रौद्योगिक कारक हैं जिसे सामाजिक परिवर्तन के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी माना जाता है।

यन्त्रीकरण के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए।

(i) यन्त्रीकरण के फलस्वरूप एक ही स्थान पर विभिन्न धर्मों, जातियों तथा विचारों के लोगों को साथ–साथ रहकर कार्य करने के अवसर मिले। इससे जाति व्यवस्था के नियम कमजोर पड़े, संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा तथा व्यक्तियों के बीच द्वितीयक या हित–प्रधान सम्बन्ध विकसित होने लगे।

(ii) स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने में भी मशीनीकरण का प्रत्यक्ष योगदान है। केवल प्रेसर कूकर, गैस के चूल्हों तथा कपड़ा धोने

तथा सफाई की मशीनों के कारण स्त्रियों को परिवार में खाली समय मिलने लगा और उन्होंने संगठित होकर शिक्षा और सम्पत्ति के अधिकारों की माँग करना आरम्भ कर दी। स्त्रियों की स्वतंत्रता में भी वृद्धि हुई।

(iii) सभी प्रकार के कार्यों में विशेषीकरण बढ़ा, काम करने का समय निश्चित हुआ, जीवन के सामान्य सुख में वृद्धि हुयी, रहन–सहन का स्तर उँचा उठा, प्रतिस्पर्धा बढ़ी, पुराने ढंग से काम करने एवं उत्पादन के तरीकों का महत्व घटा।

(iv) सामूहिक जीवन के स्थान पर व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई। इससे हमारी सांस्कृतिक विशेषताएं कमजोर हुयी।

(v) सामाजिक मूल्यों तथा नैतिक नियमों में परिवर्तन हुआ, आर्थिक सफलता सबसे महत्वपूर्ण समझी जाने लगी। नैतिकता, चरित्र शिष्टता तथा आयु व्यक्ति के सम्मान का आधार नहीं रहे।

(vi) मशीनीकरण से व्यक्तियों में यह विश्वास हो गया कि अपने प्रयत्नों के द्वारा सभी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। इससे धार्मिक विश्वासों के प्रभाव में कमी हुई तथा व्यक्ति के व्यवहारों पर कानून द्वारा नियन्त्रण स्थापित करना आवश्यक हो गया।

2. कृषि की नयी प्रविधियों द्वारा परिवर्तन–

कृषि के उन्नत उपकरण, उन्नत किस्म के बीज, पशुपालन की नयी प्रविधियाँ तथा फसल बोने और काटने की मशीनों ने ग्रामीण सामाजिक तथा आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किये।

कुछ समय पहले तक ग्रामीण जीवन सरल और आत्मनिर्भर था। कृषि की नयी प्रविधियों का उपयोग बढ़ने से कृषि का व्यापारीकरण होने लगा। नवीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये बाजारों का विकास हुआ। द्वितीयक सम्बन्धों का महत्व बढ़ने लगा तथा ग्रामीण समुदाय की आत्म–निर्भरता कम होने लगी।

जीवन स्तर में सुधार होने पर सामाजिक जागरूकता में वृद्धि हुयी तथा परम्पराओं तथा अन्धविश्वासों का प्रभाव कम हो गया।

प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से ग्रामों में भौतिक सुख सुविधाओं के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा।

पहले कृषि कार्यों को ठीक से संचालन के लिए अन्य व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता पढ़ती थी। ग्रामीणों में सामूहिकता का महत्व बना हुआ था। श्रम की बचत करने वाली मशीनों से व्यक्तिवाद तथा नाभिक परिवार का महत्व बढ़ा।

3. परिवहन तथा संचार के साधनों द्वारा परिवर्तन–

परिवहन तथा संचार के साधनों की वजह से स्थानीय दूरी कम हुयी है तथा ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का भेद कम हुआ।

भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक समूह के लोगों को एक दूसरे को समझने का मौका मिला जिसके परिणामस्वरूप उनकी सांस्कृतिक दूरी कम हुयी तथा सात्मीकरण हुआ।

सामाजिक सम्बन्धों का क्षेत्र अधिक विस्तृत तथा व्यापक बन गया।

बड़े आकार के राजनीतिक दल बनने लगे तथा प्रजातांत्रिक विचारों को प्रोत्साहन तथा उसका प्रचार–प्रसार होने लगा।

संचार के साधन के रूप में टेलीविजन तथा चलचित्रों ने हमारी नैतिकता, परम्परागत विचारों, परिवार व्यवस्था तथा स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

4. नयी उत्पादन प्रणाली तथा सामाजिक परिवर्तन–

पहले जब मशीनों का आविष्कार नहीं हुआ तो लोग अपने हाथ से ही कार्य करते थे तथा परिवार ही उत्पादन की इकाई थी। वर्तमान उत्पादन प्रणाली एक ऐसी प्रविधि पर आधारित है जिसमें श्रम–विभाजन तथा विशेषीकरण के द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जाता है। कारखानों में हजारों श्रमिकों ने साथ–साथ कार्य करना आरम्भ किया। उत्पादन का उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना है। नवीन उत्पादन प्रणाली के फलस्वरूप बड़े–बड़े व्यापारिक संघों की स्थापना हुयी। मार्क्स का विचार है कि उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होने से उद्योगपतियों तथा श्रमिकों के आर्थिक सम्बन्धों के नये प्रतिमान विकसित हुये। समाज में नये वर्गों का प्रादुर्भाव होने से उनके बीच वर्ग संघर्ष होने लगा। नयी उत्पादन प्रणाली से प्राथमिक सम्बन्धों की जगह औपचारिक तथा हित प्रधान सम्बन्धों को प्रोत्साहन मिला। एक और गाँव से नगर की ओर आकर कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की बड़ी संख्या के

कारण स्थानीय गतिशीलता में वृद्धि हुयी तो दूसरी ओर, कुटीर उद्योग नष्ट होने से गाँवों में भी बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हुयी। बड़ी मात्रा में उत्पादन से नये–नये व्यवसायों का विकास हुआ। इसने कुछ समूहों की आर्थिक दशा में सुधार किया लेकिन साथ ही अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं ने भी गम्भीर रूप ले लिया। हमारे देश में नयी उत्पादन प्रणाली के फलस्वरूप संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटने लगी। व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन आने से धीरे–धीरे सम्पूर्ण सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने लगा।

5. प्रौद्योगिक ज्ञान द्वारा परिवर्तन–

लेपियर ने यह स्पष्ट किया है कि प्रौद्योगिकी का तात्पर्य केवल मशीनों के आविष्कार से नहीं होता बल्कि इसका मुख्य सम्बन्ध उस नवीन ज्ञान से है जिसकी सहायता से हम अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यही प्रौद्योगिक ज्ञान वह कारक है जिसने सामाजिक परिवर्तन लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्रौद्योगिक ज्ञान एक तार्किक ज्ञान है जिसमें रहस्यमय विश्वासों और परम्पराओं का कोई स्थान नहीं होता। प्रौद्योगिक ज्ञान केवल उसी तथ्य को स्वीकार करता है जिसे प्रयोग अथवा तर्क के आधार पर समझा जा सके। इसके फलस्वरूप समाज में लोगों के धार्मिक विश्वासों और परम्परागत व्यवहारों का प्रभाव कम होने लगता है। प्रौद्योगिक ज्ञान के फलस्वरूप अनेक ऐसे नियमों तथा संस्थाओं का विकास हुआ जिन्हें कुछ समय पहले तक अधार्मिक समझा जाता था।

6. अणु–शक्ति पर नियन्त्रण तथा सामाजिक परिवर्तन–

अणु शक्ति पर नियंत्रण स्थापित करके मानव ने मानवीय जीवन में सुख की वृद्धि सुनिश्चित की तथा सामाजिक प्रगति तथा विकास के अकल्पनीय स्वप्न साकार किये। यदि अणु शक्ति के नकारात्म्क प्रयोग से समाज और राष्ट्र अपने को दूर रख ले जायें तो यह निश्चित ही एक वरदान है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विभिन्न प्रौद्योगिक कारकों ने समाज में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न करके हमारे सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक संरचना को प्रभावित किया है। एक ओर प्रौद्योगिक कारकों ने विशेषीकरण, श्रम–विभाजन, तार्किकता, उच्च जीवन स्तर सामाजिक गतिशीलता तथा नगरीकरण को प्रोत्साहन देकर अनेक लाभ प्रदान किये तो दूसरी ओर, इसने प्रतिस्पर्धा, व्यक्तिवादिता, व्यावसायिक अनिश्चिता, बेरोजगारी, पारिवारिक तनावों तथा अपराधों में वृद्धि करके हमारे सामाजिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है।

अध्याय–6

सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक

सांस्कृतिक कारक का अर्थ–

संस्कृति के विभिन्न प्रतिमान अथवा दशायें जो सांस्कृतिक संरचना का प्रमुख अंग होती है, उन्हीं को हम सांस्कृतिक कारक कहते है।

सामाजिक परिवर्तन पर सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव–

1. सांस्कृतिक विलम्बना–

आगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बना को सांस्कृतिक परिवर्तन के सर्वप्रमुख कारक के रूप में स्पष्ट किया है। इसे स्पष्ट करते हुए आगबर्न ने बताया कि मोटे तौर पर संस्कृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. भौतिक संस्कृति 2. अभौतिक संस्कृति।

भौतिक संस्कृति वह है जिसका एक मूर्त स्वरूप होता है। इसमें उन सभी भौतिक पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है जिनका मनुष्य द्वारा निर्माण किया गया है तथा उन्हें मनुष्य अपने उपयोग में लाता है। उदाहरण के लिये विभिन्न प्रकार की मशीनें, उपकरण, इमारतें, वस्त्र, बर्तन, कलम तथा कलात्मक वस्तुयें भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत आती है।

अभौतिक संस्कृति अमूर्त होती है तथा इसका कोई स्थूल रूप नहीं होता। हमारे सभी विश्वास, विचार, प्रथायें तथा परम्परायें आदि अभौतिक संस्कृति के उदाहरण है।

जब कभी भी संस्कृति का एक भाग दूसरे की तुलना में आगे बढ़ जाता है तो व्यवहार के नये ढंगों का विकास होता है तथा लोगों की मनोवृत्तियाँ एक दूसरे से भिन्न हो जाती है। इसके फलस्वरूप लोगों को समाज में नये सिरे से अनुकूलन करना आवश्यक हो जाता है। इस समय संस्थाओं के परम्परागत कार्यों में परिवव्रन होने लगता है। यह सभी दशायें ऐसी है जो सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देती है। उदाहरणस्वरूप, जब यन्त्र चालित गाड़ियाँ आयी, महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन हो गया।

1. प्रौद्योगिक विलम्बना–

कभी–कभी भौतिक संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं में ही असन्तुलन की दशा उत्पन्न हो जाती है। ये असन्तुलन समाज में अनेक समस्याओं को जन्म देती है। इन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक परिवर्तनों के कार्यक्रम को लागू करना पड़ता है। इस प्रकार भौतिक असन्तुलन समाज में परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न करता है। उदाहरणस्वरूप, प्रौद्योगिकी विकास के साथ परिवहन के साधनों में वृद्धि हो जाती है, उस अनुपात में सड़कों का विकास नहीं हुआ। परिणामस्वरूप, अनेक परिवर्तनों के कार्यक्रमों को लागू करना पड़ा।

3. परसंस्कृतिग्रहण–

रेडफील्ड, लिन्टन तथा हर्षकोविट्स ने परसंस्कृतिग्रहण को सामाजिक परिवर्तन के एक प्रमुख सांस्कृतिक कारक के रूप में स्पष्ट किया है। परसंस्कृतिग्रहण की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए इन्होंने लिखा, ''परसंस्कृतिग्रहण का तात्पर्य एक ऐसी दशा से है जो विभिन्न संस्कृतियों वाले समूहों के एक–दूसरे के निकट और निरन्तर सम्पर्क में आने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है तथा इसके फलस्वरूप उन समूहों में से किसी एक या दोनों की मौलिक सांस्कृतिक विशेषताओं में परिवर्तन हो जाता है।

वास्तव में, परसंस्कृतिग्रहण एक चेतन प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक समूह का दूसरे समूह की सांस्कृतिक विशेषताओं को अधिक उपयोगी समझकर उन्हें जान–बूझकर ग्रहण करता है। धीरे–धीरे यह नई सांस्कृतिक विशेषतायें ही उस समूह के सदस्यों के व्यवहारों का स्थायी अंग बन जाती है। जिन समाजों पर किसी अन्य का राजनीतिक अथवा आर्थिक दबाव होता है, उन समाजों में परमसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया अधिक तीव्र होती है। कभी–कभी परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया इतनी स्वाभाविक होती है कि एकाएक इसका आभास भी कठिननता से हो पाता है। ऐसा तब होता है जब दो विभिन्न संस्कृतियों वाले समूह काफी समय तक एक–दूसरे के निकट सम्पर्क में रहते हैं। इस दशा में एक छोटे समूह द्वारा अपने से बड़े समुदाय की संस्कृति को ग्रहण किया जाता है। उदाहरण के लिए, जब एक जनजाति किसी सभ्य समाज के सम्पर्क में

आती है, तब उस जनजाति के सदस्य धीरे–धीरे अपने से बाहरी संस्कृति की विशेषताओं को ग्रहण करने लगते हैं।

4. संस्कृति का प्रसार–

अनेक विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन को प्रसार के सिद्धान्त के आधार पर स्पष्ट किया है। इनमें क्लार्क विसले का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने अमेरिका की रेड इण्डियन जनजाति की सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन करके यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक संस्कृति एक विशेष केन्द्र में विकसित होती है और धीरे–धीरे वहीं से उसका समीप के दूसरे स्थानों में प्रसार होने लगता है। शाब्दिक रूप से प्रसार का अर्थ फैलना होता है। इसका तात्पर्य है कि जब एक दूसरे के सम्पर्क में रहने से विभिन्न समूहों की विशेषताएं एक–दूसरे के बीच फैलने लगती है तब इसे हम सांस्कृतिक प्रसार की दशा कहते हैं। वास्तव में, संस्कृति प्रसार तथा परसंस्कृतिग्रहण एक दूसरे से भिन्न दशायें हैं। परसंस्कृतिग्रहण एक चेतन प्रक्रिया है जिसमें एक समूह के व्यक्ति सोच–समझकर दूसरी संस्कृति के तत्वों को उनकी उपयोगिता के कारण ग्रहण करते हैं। दूसरी ओर, संस्कृति–प्रसार एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके द्वारा कुछ सांस्कृतिक विशेषताओं का अपने निकटवर्ती क्षेत्रों में स्वयं ही प्रसार होने लगता है। उदाहरण के लिये, भारत या यूरोप की सांस्कृतिक विशेषतायें एक–दूसरे से बहुत भिन्न है। इसके बाद भी भारत में जब अंग्रेजों का शासन आरम्भ हुआ तो उनके निकट सम्पर्क में रहने के कारण भारतीयों में

पश्चिमी संस्कृति की विशेषताओं का प्रसार होने लगा। भारत में जब इन सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रसार हुआ, तब हमारी सामाजिक संस्थाओं जैसे– परिवार, विवाह, जाति–व्यवस्था तथा गाँव पंचायतों में व्यापक परिवर्तन होने लगे।

4. धार्मिक आचार–

मैक्स वेबर ने धार्मिक आचारों को एक प्रमुख सांस्कृतिक कारक मानते हुए उन्हीं के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की विवेचना की। वेबर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism' में धर्म तथा सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए सिद्धान्त प्रस्तुत किया। वेबर ने विभिन्न समाजों की धार्मिक विशेषताओं का अध्ययन करके यह निष्कर्ष दिया कि लोगों के आर्थिक व्यवहार पर उनके धार्मिक आचारों अथवा धार्मिक विशेषताओं का प्रभाव होता है। उदाहरण के लिए, प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आचार लोगों को यह विश्वास दिलाते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को कठिन परिश्रम करना चाहिए, परिश्रम को बोझा समझना ईश्वर का अपमान करना है, सिद्धान्तपूर्ण ढंग से सम्पत्ति का संचय करना बुरा नहीं है, मद्यपान से व्यक्ति की कार्यकुशलता कम हो जाती है, व्यक्तियों को कम से कम छुट्टियाँ लेनी चाहिए, वैराग्य की तुलना में कर्तव्यों का पालन करना अधिक आवश्यक है आदि। यह सभी विश्वास ऐसे है जो एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को विकसित करने में सहायक हुये। कैथोलिक धर्म की विशेषतायें प्रोटेस्टेण्ट धर्म से भिन्न है। यही कारण है

कि जिन देशों में प्रोटेस्टेण्ट धर्म का विकास हुआ, वहाँ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बहुत अधिक विकसित हुयी। कैथोलिक धर्म को मानने वाले देशों में पूँजीवाद का अधिक विकास नहीं हो सका।

6. नवाचार–

बार्नेट ने अपनी पुस्तक Innovation- The Basis of Cultural Change' में यह स्पष्ट किया कि नवाचार एक प्रमुख सांस्कृतिक कारक है तथा इसी के आधार पर सभी प्रमुख सामाजिक परिवर्तनों को समझा जा सकता है। बार्नेट के शब्दों में, ''नवाचार का अर्थ किसी भी ऐसे नये विचार, व्यवहार अथवा वस्तु से है जो प्रचलित स्वरूप से भिन्न होती है।'' स्पष्ट है कि नवाचार का तात्पर्य कार्य करने, विचार करने अथवा व्यवहार करने के किसी भी उस नये ढंग से है जिसे प्रोत्साहन मिलने से व्यक्तियों की जीवन–विधि तथा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन होने लगता है। आज नवाचारों के कारण सामाजिक क्षेत्र में व्यवहार के अनेक नये ढंग विकसित हो गये। नये विश्वासों ने समाज सुधार आन्दोलन को बहुत तेज कर दिया। कृषि की नयी प्रविधियों के उपयोग से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो गया। परिवार नियोजन के नये साधनों से परिवारों की संरचना पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सच तो यह है कि आदिम युग से लेकर आज तक नवाचारों में होने वाली वृद्धि की सहायता से ही सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

7. सांस्कृतिक संघर्ष–

सांस्कृतिक संघर्ष वह दशा है जिसके अन्तर्गत एक–दूसरे से भिन्न संस्कृतियों वाले दो अथवा अधिक समूहों के बीच संघर्ष होने लगता है। ऐसा संघर्ष साधारणतया तब होता है जब एक विशेष संस्कृति वाले समूह के बीच किसी दूसरी संस्कृति के लोग आकर रहने लगते हैं। अपनी भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक संस्कृतियों के कारण दोनों समूह एक–दूसरे पर अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को लादने का प्रयत्न करते हैं जिसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक संघर्ष की समस्या उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिये, भारतीय समाज में संयुक्त परिवार, शिक्षा तथा धार्मिक विश्वासों से सम्बन्धित परम्परागत मान्यतायें एक लम्बे समय तक प्रभावपूर्ण बनी रही लेकिन जब अंग्रेजों ने जब यहाँ एकाकी परिवार, अंग्रेजी शिक्षा तथा आधुनिक व्यवहारों से सम्बन्धित संस्कृति का प्रचार करना आरम्भ किया, तब इन दोनों संस्कृतियों के बीच काफी लम्बे समय तक संघर्ष की दशा बनी रही। समाज में जब भी सांस्कृतिक संघर्ष की दशा पैदा होती है, तब बहुत से लोग अपने सामाजिक मूल्यों को अनुपयोगी समझने लगते हैं। इसके फलस्वरूप व्यक्तियों के व्यवहारों पर प्रथाओं तथा सामाजिक आदर्श–नियमों का नियन्त्रण कमजोर पड़ने लगता है।

8. वैचारिक परिवर्तन–

कॉम्ट, वेबर, मार्क्स, दुर्खीम, सोरोकिन तथा कार्ल मानहीम जैसे सभी विद्वान यह मानते है कि विचार एक ऐसा सांस्कृतिक कारक है जिसकी

सामाजिक परिवर्तन लाने में विशेष भूमिका होती है। उदाहरण के लिये, एक लम्बे समय तक यह माना जाता रहा है कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है तथा उसके आदेशों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है। राजतन्त्र की जगह जब नये राष्ट्रों का उदय हुआ तो लोगों के विचारों में परिवर्तन हो जाने से राज्य के अधिकारों में वृद्धि होने लगी, निम्न और मध्यम वर्गों के अधिकारों में वृद्धि हुयी, सामाजिक व्यवस्था को समताकारी बनाने के प्रयत्न होने लगे तथा प्रत्येक व्यवहार में तर्क और विवेक को महत्व दिया जाने लगा।

लेपियर ने लिखा है, ''हम जैसा सोचते हैं, उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं।'' इस प्रकार विचारों में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की दशा उत्पन्न करता है।

निष्कर्ष–

संस्कृति सामाजिक परिवर्तनों के दिशा–निर्देशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अध्याय–7

सूचना प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तन

सूचना प्रौद्योगिकी जन संचार का एक भाग है जिसका सम्बन्ध लोगों के जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़ी हुई आवश्यकताओं के बारे में सूचनायें प्रदान करना तथा सूचनाओं के माध्यम से लोगों के व्यवहार को प्रभावित करना होता है। सूचना प्रौद्योगिकी को कम्प्यूटर विज्ञान तथा संचार तकनीक का मिश्रण कहा जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से कम प्रयासों तथा कम व्यय द्वारा किसी भी प्रकार की सूचना तथा इसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है तथा एक विशेष दशा में सही निर्णय लेकर अपने काम को व्यवस्थित रूप से पूरा किया जा सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है–

1. प्रकृति संगठित होती है।
2. इसकी प्रकृति प्रचार से भिन्न है।
3. अनेक उपकरणों तथा प्रविधियों का वह समूह है जिसके द्वारा तथ्यों, विचारों और कार्य के विशेष तरीकों को समुदाय के एक बड़े भाग तक पहुँचाया जाता है।
4. यह एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोगों के व्यवहार में परिवर्तन आता है।

5. वर्तमान युग में सूचना प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का सबसे द्रूतगामी व प्रभावशाली स्रोत बन गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रमुख साधन अथवा प्रकार–

1. डाक व्यवस्था 2. प्रेस अथवा समाचार–पत्र

2. दूरसंचार, तार, टेलीफोन, मोबाइल, फैक्स तथा इंटरनेट

3. रेडियो तथा टेलीविजन

4. विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय

6. भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली

7. कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी

सामाजिक परिवर्तन में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका–

1. सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन–

सामाजिक व्यवस्था एक विशेष दशा है जिसमें विभिन्न व्यक्ति, समूह और संस्थायें अपने पूर्व–निर्धारित प्रकार्यों के द्वारा एक–दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था को कुछ विशेष सांस्कृतिक लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने से सम्बन्धित आदर्श नियमों की एक व्यवस्था के रूप में स्पष्ट किया है। इसका तात्पर्य है कि कुछ विशेष दशाओं के प्रभाव से जैसे–जैसे किसी समाज के लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों, सामाजिक प्रस्थिति, लोगों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने वाले नियमों और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगता है,

सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति भी बदलने लगती है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप लोगों का सामूहिक जीवन व्यक्तिवादी मनोवृत्तियों से प्रभावित होने लगा। समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति का निर्धारण परम्परा, धार्मिक नियमों तथा आयु के आधार पर न होकर व्यक्तिगत कुशलता के आधार पर होने लगा। अधिकांश लोगों के व्यवहारों पर प्रथाओं का नियन्त्रण समाप्त हो गया। व्यवसाय का परम्परागत रूप बदलने लगा। इसके फलस्वरूप परम्परागत सामाजिक व्यवस्था आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का रूप लेने लगी। सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव से आज प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में अपने से बाहरी संस्कृतियों की विशेषताओं का मिश्रण देखने को मिलता है।

2. सामाजिक संरचना पर प्रभाव–

सामाजिक संरचना का सम्बन्ध विभिन्न समूहों, संगठनों और संस्थाओं के उस रूप से है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक समूह और संस्था कुछ विशेष अन्तर्क्रियाओं के द्वारा एक–दूसरे से सम्बन्धित रहती है। समाज की संरचना का निर्धारण विभिन्न प्रस्थितियों वाले लोगों द्वारा अपनी निर्धारित भूमिकाओं को इस तरह पूरा करना होता है जिसके द्वारा वे सांस्कृतिक नियमों के अनुसार अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। वर्तमान युग में सूचना प्रौद्योगिकी में परिवर्तन हो जाने से समाज के लोगों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा वैधानिक प्रस्थिति बदलने लगी। विभिन्न प्रस्थितियों में परिवर्तन होने से हमारी भूमिकायें भी तेजी से बदल रही है।

कुछ समय पहले तक व्यवहार के जिन नियमों को सांस्कृतिक और धार्मिक आधार पर महत्वपूर्ण समझा जाता था, उन्हें अब उपयोगी नहीं समझा जाता। उदाहरण के लिए, भारत में जाति व्यवस्था से सम्बन्धित नियमों के आधार पर बनने वाली सामाजिक संरचना पूरी तरह टूट चुकी है। इसका स्थान एक ऐसी संरचना ने ले लिया है जो पहले की तुलना में कहीं अधिक समताकारी है। विभिन्न क्षेत्रों में मिलने वाली वास्तविक सूचनाओं में परिवर्तन होने लगता है। सामाजिक संरचना में स्त्रियों की प्रस्थिति और उनकी भूमिका में होने वाले परिवर्तन से इस तथ्य को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

3. सामाजिक स्तरीकरण में परिवर्तन–

जब कोई समाज एक–दूसरे से उँची और नीची प्रस्थितियों वाले अनेक समूहों में विभाजित होता है तब इस दशा को हम सामाजिक स्तरीकरण कहते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का रूप अविकसित होने की दशा में साधारणतया धार्मिक विश्वासों, आयु, लिंग, जाति तथा वंश के आधार पर ही विभिन्न समूहों को विभिन्न प्रस्थितियाँ मिलती है। वैज्ञानिक शिक्षा में वृद्धि होने से जैसे–जैसे सूचना प्रौद्योगिकी का विकास होने लगता है, सामाजिक स्तरीकरण की प्रकृति भी बदलने लगती है। आज कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी का बहुत विकास हो जाने के फलस्वरूप कोई व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरूष, निर्धन हो या धनी, अल्पसंख्यक समुदाय का हो या

बहुसंख्यक समुदाय का हो, वह अपनी योग्यता के द्वारा बड़े से बड़े पद को प्राप्त करके समाज में शक्ति और सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है।

4. सामाजिक सम्बन्धों का वस्तुकरण–

समाज में जब नई प्रौद्योगिकी के प्रभाव से नये–नये उपकरणों और प्रविधियों का उपयोग बढ़ने लगता है तब हमारे भावनात्मक सम्बन्धों का आधार कमजोर पड़ने लगता है। इस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति बिगड़ने लगती है।

5. सामाजिक अन्तर्क्रियाओं में परिवर्तन–

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम के रूप में होने वाली अन्तर्क्रियाओं में कम्प्यूटर का प्रयोग जैसे–जैसे बढ़ा, लोगों के बीच हंसी–मजाक और मनोरंजन के रूप में होने वाली अन्तर्क्रियायें ई–मेल पर दिये गये संदेशों और चैटिंग तक ही सिमट कर रह गयी। जब हम कम्प्यूटर से जुड़े किसी विशेष कार्यक्रम पर कार्य करने लगते हैं तब हम उससे अलग होकर अपनी जिन्दगी को नहीं देख पाते। मित्रता तथा नातेदारी सम्बन्धों के लिये टेलीफोन वार्ता या कम्प्यूटर चैटिंग के द्वारा ही पूरा करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। आज हम अपने गाँव या समुदाय से सम्बन्धित जानकारियों की तुलना में सम्पूर्ण देश और विदेशों की राजनीति तथा आर्थिक मामलों से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करना अधिक आवश्यक समझने लगे हैं। इसी तरह की जानकारियाँ हमारे व्यवहार– प्रतिमानों को प्रभावित करती है।

6. विचारों तथा मनोवृत्तियों में परिवर्तन–

एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिये यह जरूरी होता है कि समय की माँग के अनुसार लोगों के विचारों, दृष्टिकोण और मनोवृत्तियों में परिवर्तन होता रहे। वर्तमान युग में हमारे परम्परागत धार्मिक विश्वासों, कुरीतियों, जाति व्यवस्था के असमानताकारी नियमों, नैतिकता, तथा स्वास्थ्य से सम्बन्धित विचारों, स्त्रियों की प्रस्थिति तथा पारिवारिक जीवन के प्रति हमारे विचारों तथा मनोवृत्तियों में जो व्यापक परिवर्तन हो रहे है, उसका एक प्रमुख कारण सूचना प्रौद्योगिकी में होने वाला परिवर्तन ही है। आज टेलीविजन, दूरसंचार तथा सोशल नेटवर्किंग के द्वारा प्राप्त होने वाली सूचनायें से समाज–सुधार को एक नया रूप मिलने लगा है।

7. वैश्वीकरण में वृद्धि–

जब पूरी दुनिया के प्रति हमारा सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण बदलने लगता है, तब हमारे सामाजिक सम्बन्ध केवल अपने समुदाय, नगर अथवा देश तक ही सीमित नहीं रह जाते। हम अपने से भिन्न देशों की सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाने के साथ ही उनसे अभियोजन करने लगते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी ने ऐसी दशायें उत्पन्न की जिनके फलस्वरूप हम अपने मूल स्थान से बहुत दूर रहने के बाद भी अपने नाते–रिश्तेदारों, मित्रों और विभिन्न हितों से जुड़े लोगों से हर समय सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसी का परिणाम है कि आज भारतीय मूल के लोग दुनिया के सभी देशों में जाकर रहने लगे है। भारत में व्यापार का

एक बहुत बड़ा हिस्सा उन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा संचालित है जिनमें विदेश के लोगों की बड़ी हिस्सेदारी है। पूँजी और बौद्धिक सम्पदा के आदान–प्रदान में भी सूचना–प्रौद्योगिकी ने विशेष योगदान किया है।

8. आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन–

अनेक समाजशास्त्री यह मानते हैं कि किसी समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिये यह देखना जरूरी है कि वहाँ परम्परा की जगह आधुनिकता में कितनी वृद्धि हुयी है। आधुनिकीकरण की विशेषताओं में वृद्धि करने में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रमुख योगदान है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से आज समाज में समताकारी मूल्यों को प्रोत्साहन मिला। समाज के सभी सामाजिक और आर्थिक वर्गों की परम्परागत दूरी कम होने लगी। वैज्ञानिक शिक्षा में वृद्धि होने से मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व मिलने लगा। सूचना प्रौद्योगिकी ने एक ऐसा वातावरण तैयार किया जिसके फलस्वरूप सरकार को जनता की भावनाओं के अनुसार कानून बनाना आवश्यक हो गया। भारत में अन्ना हजारे द्वारा सन् 2011 में चलाया गया भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन सूचना प्रौद्योगिकी के कारण ही गाँव–गाँव तक पहुँच गया और इसी के प्रभाव से लोकपाल कानून को आज लागू किया जा सका। मार्च 2012 में स्त्रियों के अधिकारों को बढ़ाने के लिये हिन्दू विवाह कानून में जो व्यापक परिवर्तन किये गये वह सूचना प्रौद्योगिकी का ही परिणाम है। ऐसे सभी परिवर्तन तार्किक व्यवहार से सम्बन्धित होने के कारण आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देते हैं।

9. नवाचारों में वृद्धि–

नवाचार कोई भी वह विचार, कार्य करने का ढंग अथवा विशेषता है जिसे लोगों द्वारा एक नये तथ्य के रूप में देखा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी वह महत्वपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा एक–दूसरे से भिन्न धर्मों, समुदायों और क्षेत्रों के लोग एक–दूसरे की प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं के सम्पर्क में आने लगते हैं। किसी समुदाय में जैसे–जैसे नवाचारों में वृद्धि होती है, सामाजिक परिवर्तन में भी तेजी से वृद्धि होती है।

10. नियोजित परिवर्तन में सहायक–

भारत जैसे गाँव प्रधान देश के विकास के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण अपने परम्परागत विश्वासों को छोड़कर नये विकास कार्यक्रमों में अधिक से अधिक सहभाग करे। सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा ही ग्रामीणों को अपने विकास कार्यक्रमों को स्वीकार करने और उनमें सहभाग करने की प्रेरणा दी जाती है। सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से ही सरकार को अपने विकास कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन करने की सुविधा प्राप्त होती है। इसी की सहातया से नये कार्यक्रम बनाना अथवा नयी नीतियो को लागू करना संभव हो पाता है। नियोजित परिवर्तन के लिये यह आवश्यक है कि सामाजिक–आर्थिक विकास से सम्बन्धित कानूनों के प्रति लोगों में अधिक से अधिक विश्वास और जागरूकता हो। सूचना प्रौद्योगिकी

ही वह माध्यम है जिसके द्वारा इस तरह की जागरूकता पैदा करके नियोजित परिवर्तन को अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

11. अर्थव्यवस्था तथा राजनीति में परिमार्जन–

वर्तमान लोकतांत्रिक समाजों में एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष अर्थव्यवस्था के साथ ही सन्तुलित राजनीति का विशेष महत्व है। अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सिद्धान्तों का उतना महत्व नहीं होता जितना व्यावहारिक नीतियों और विकास कार्यक्रमों का होता है। सूचना प्रौद्योगिकी से सरकार को वे आँकड़े प्राप्त होते हैं जिनकी सहायता से व्यावहारिक नीतियों को लागू किया जा सकता है। विभिन्न आर्थिक वर्गों की आवश्यकताओं और सुविधाओं के बीच संतुलन स्थापित करने में भी सूचना प्रौद्योगिकी का विशेष महत्व है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति में होने वाले परिवर्तन से भी सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन मिलता है। सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न साधन जैसे समाचार पत्र, इन्टरनेट आदि के आधार पर किये जाने वाले जनमत सर्वेक्षण यह स्पष्ट करते है कि एक विशेष अवधि में विभिन्न राजनैतिक दलों की लोकप्रियता और शक्ति में कितनी कमी या वृद्धि हुई है। सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा सरकार और विभिन्न राजनैतिक दलों के दोषों को उजागर करके भी उनके व्यवहारों पर नियन्त्रण रखना संभव हो पाता है। आज हमारे देश में राजनैतिक भ्रष्टाचार तथा काले धन की व्यापकता को उजागर करने में सूचना प्रौद्योगिकी का ही योगदान सर्वोपरि रहा है। इसी के प्रभाव से एक

ऐसे तन्त्र को विकसित करने की माँग की जा रही है जिसमे ंराजनैतिक व्यवस्था को अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

सूचना प्रौद्योगिकी से उत्पन्न समस्यायें–

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारकों में सूचना प्रौद्योगिकी आज एक प्रमुख कारक है। इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विकास से सम्बन्धित सभी प्रयत्नों से कुछ नयी समस्याओं का भी प्रादुर्भाव होता है। सूचना प्रौद्योगिकी से उत्पन्न समस्यायें भी पारिवारिक सम्बन्धों, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक क्षेत्र में विघटन की नयी दशायें उत्पन्न करने लगती है। इन समस्याओं को संक्षेप में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है–

1. सामुदायिक सम्बन्धों का महत्व कम होना–

सूचना प्रौद्योगिकी के कारण लोगों के सम्पर्क का क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाने के कारण समाज में प्राथमिक और सामुदायिक सम्बन्धों का महत्व कम होता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास होने से जैसे–जैसे नये व्यवसायों के द्वारा लोग आजीविका उपार्जित करने लगे, उनमें स्थान–परिवर्तन की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। फलस्वरूप परिवार के सदस्यों तथा नातेदारों के बीच भी औपचारिक और हितप्रधान सम्बन्धों सम्बन्धों में वृद्धि होने लगी।

2. व्यावसायिक मनोरंजन के साधनों को प्रोत्साहन–

सूचना प्रौद्योगिकी की वजह से मनोरंजन के वे सांस्कृतिक साधन कमजोर पड़ने लगे जो बच्चों के आरम्भिक जीवन में ही उनके चरित्र–निर्माण तथा संस्कृति के प्रशिक्षण से सम्बन्धित थे। परिवार में हास्य, चुटकुले, और कहानियों के माध्यम से होने वाले मनोरंजन का लगभग पूर्ण अभाव हो गया हैं

3. अपराधों में वृद्धि–

सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न साधनों के फलस्वरूप अनेक ऐसे अपराधों में वृद्धि होने लगी जिन्हें पकड़ा जाना साधारणतया बहुत कठिन होता है। कम्प्यूटर प्रणाली से तरह–तरह की आर्थिक धोखाधड़ी को प्रोत्साहन मिला, मोबाइल सुविधाओं के फलस्वरूप संगठित अपराधों की संख्या बढ़ने लगीं तथा टेलीविजन के विभिन्न चैनलों पर दिखाये जाने वाले अपराध सम्बन्धी चलचित्रों से सम्पन्न परिवारों के युवाओं को भी अपराध करने का प्रोत्साहन मिलने लगा।

4. व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित नयी समस्यायें–

वर्तमान में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग व्यावसायिक और व्यापारिक क्षेत्रों में अधिक होने से व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित नयी समस्यायें उत्पन्न हुयी है। विभिन्न कम्पनियां विज्ञापन के उद्देश्य से लाखों उपभोक्ताओं को जब एस0 एम0 एस0 अथवा टेलीफोन काल करने लगती है तो इच्छा न होने पर भी व्यक्ति को उनको सुनना जरूरी हो

जाता है। अक्सर ऐसी कॉलों से व्यक्ति के सामने तनावपूर्ण दशा पैदा होने लगती है।

5. पारिवारिक सम्बन्धों की घनिष्ठता कम होना–

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से हमारे पारिवारिक सम्बन्धों की घनिष्ठता कम होती जा रही है। मध्यम वर्ग तथा उच्च मध्यम वर्ग में महिलाओं की आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी बढ़ने से लाखों माता–पिता अपने बच्चों से बातचीत करने का समय भी नहीं निकाल पाते। अक्सर उनके सम्बन्ध टेलीफोन, मोबाइल तथा इंटरनेट तक ही सीमित रह जाते है।

6. अश्लील कार्यक्रम–

अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कम्प्यूटर के बढ़ते हुए उपयोग से अब छोटे–छोटे बच्चे भी ऐसी साइट ढूंढ लेते हैं जिनसे वे छिपे तौर पर अश्लील कार्यक्रम देख सके। इससे एक तनावग्रस्त मानसिकता में वृद्धि होने के साथ ही नैतिक मूल्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है।

7. स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें–

वर्तमान में अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें भी मोबाइल तथा कम्प्यूटर के बढ़ते हुए प्रयोग का परिणाम है। चिकित्सा विज्ञान का मानना है कि केवल मोबाइल के अधिक उपयोग से मस्तिष्क और कानों के विकारों के अतिरिक्त हृदय सम्बन्धी कुछ विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। कम्प्यूटर का अधिक उपयोग करने से आँखों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है

तथा बहुत से लोगों को गर्दन और कमर में दर्द की शिकायत पैदा हो जाती है। कम आयु में रीढ़ की हड्डी से सम्बन्धित बीमारियों के लिए भी मोबाइल तथा कम्प्यूटर का अधिक उपयोगी उत्तरदायी है।

8. भाषा और लेखन शैली की दयनीय स्थिति–

भाषा और लेखन शैली के विकास को संचार के साधनों ने बहुत दयनीय बना दिया है। अब न तो विभिन्न उद्देश्यों के लिये पत्राचार का कोई महत्व रहा है न ही अभिव्यक्ति के लिये लेखन शैली को एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में देखा जाता है। अधिकांश लोगों की भाषा ई–मेल और एस0 एम0 एस0 की टूटी–फूटी भाषा में सिमट कर रह गयी है।

सूचना प्रौद्योगिकी की सामाजिक परिवर्तन लाने में सीमाएं–

यह सामाजिक परिवर्तन लाने में तभी उपयोगी हो पाती है जब यह सरकार के नियंत्रण से मुक्त हो तथा निष्पक्ष रूप से जनसाधारण को विभिन्न सूचनायें उपलब्ध हो। यही कारण है कि निरंकुश अथवा एकदलीय शासन व्यवस्था की तुलना में लोकतान्त्रिक समाजों में सूचना प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन लाने में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाती है।

●